

# मोर का नाच है हिंदी पत्रकारिता



क्या कभी आपने मोर का नाच देखा है ? मोर का नाच है, हिंदी पत्रकारिता। मोर के पंखों की तरह इसका घेरा विशाल है। देश में सबसे बड़ा पाठकवर्ग इसका ही है। कोई कोना ऐसा नहीं जहां हिंदी का अखबार न पहुंचता हो। पत्रकारिता की कोई ऐसी विधा नहीं, जिसमें हिंदी के पत्रकारों ने अपना चमत्कार न दिखाया हो। साज-सज्जा, मुद्रण, खबर-लेखन व संपादन या समाचार संकलन – हर क्षेत्र में हिंदी पत्रकारिता किसी भी भाषा की पत्रकारिता से कम नहीं है।

मोर के पंखों की तरह हिंदी पत्रकारिता का रेशा-रेशा लुभावना है। चुनाव के मौसम में राजनेताओं और नौकरशाहों की नजर में हिंदी पत्रकारिता बहुत ऊंची चढ़ जाती है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि कम से कम उत्तर भारत की भाग्य विधाता हिंदी पत्रकारिता ही है, लेकिन यह अनुभूति क्षणिक है। वास्तव में वह मोर का नाच ही है। नाच के बाद मोर जब अपने क्षीण और मलिन पांवों की ओर निहारता है तो उसकी आंखों से आंसू ढलकने लगते हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि हिंदी प्रदेशों से निकलने वाले अखबारों ने अपने क्षेत्र में अंग्रेजी के अखबारों को लगभग प्रभाहीन कर दिया है और क्षेत्रीय पत्रकारिता के उत्कृष्ट मानदण्ड स्थापित किए हैं। लेकिन जहां तक अखिल भारतीयता का प्रश्न है आज भी हिंदी इलाके में उसके बाहर और दिल्ली में अंग्रेजी पत्रकारिता का वर्चस्व कायम है।

राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय खबरों के लिए आज भी देश के लोग अंग्रेजी अखबारों और अंग्रेजी समाचार एजेंसियों पर ही निर्भर रहते हैं। जो भी अंग्रेजी पढ़ना-लिखना जानता है उसकी कोशिश यही होती है कि वह हिंदी की बजाय अंग्रेजी अखबार पढ़े। यह तथ्य इतना दुर्निवार है कि हिंदी अखबारों के संपादक भी अपने सम्पादकीय अंग्रेजी अखबार को पढ़े बिना नहीं लिख सकते। इतना ही नहीं, हिंदी के अनेक तथाकथित प्रांतीय अखबार केवल अंग्रेजी एजेंसियों की खबरों का अनुवाद करते हैं। उन्हें हिंदी समितियों की मौलिक खबरों का भरोसा नहीं है। दूसरे शब्दों में देश का हिंदी जगत खबरों के मामलों में प्रायः अंग्रेजी की जूठन पर ही पल रहा है।

जहां तक लेखों का प्रश्न है, हिंदी का एक भी अखबार ऐसा नहीं है जिसमें बाकायदा स्तम्भकार हों और उन्हें अपने विषय का सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता और मौलिक चिंतक माना जाता हो। पिछले कुछ समय से यद्यपि अंग्रेजी अखबार भी इसी दुर्दशा को प्राप्त हो गए हैं लेकिन पिछले कुछ दशकों में उन्होंने इस क्षेत्र में उल्लेखनीय मानदंड स्थापित किए थे।

इसका मतलब यह नहीं कि हिंदी में विशेषज्ञों और मौलिक चिंतकों की कमी है। विचारणीय यह है कि जो है, उनको भी वह मान्यता प्राप्त नहीं है जो कि होनी चाहिए। वास्तव में अनेक हिंदी अखबारों ने अपने संतुलित वस्तुनिष्ठ और अंतर्दृष्टिपूर्ण संपादकीयों के द्वारा पत्रकारिता के उच्चतम प्रतिमान कायम किए हैं। लेकिन खेद यही है कि जो वर्ग इस देश का सूत्र संचालन कर रहा है उसके बीच इन स्वर्ण-शिखरों को कोई मान्यता नहीं।

हिंदी पत्रकारिता की इस लाचारी का कारण क्या है और उसका इलाज क्या है ? अगर इसका कारण सिर्फ एक वाक्य में बताना हो तो हम कह सकते हैं कि सारे देश में अंग्रेजी का सर्वतोमुखी दबदबा ही इसका कारण है।

देश के बड़े-बड़े हिंदी अखबारों और हिंदी समाचार समितियों को अंग्रेजी अखबारों और अंग्रेजी न्यूज एजेंसियों का दुमछल्ला बना दिया गया है। यह दुमछल्लापन जमीन पर नहीं है, लेकिन दिमाग में है। किसके दिमाग में है ? खासतौर से उन मालिकों और संचालकों के दिमाग में है जो अंग्रेजी अखबार और एजेंसियां चलाते हैं। उनका पूरा ध्यान अंग्रेजी अखबारों और एजेंसियों पर ही होता है। हिंदी के संचार माध्यमों की देखभाल तो सौतेले बेटे की तरह अपने आप ही होती रहती है। यह बात मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि उक्त मालिक और संचालक लोग न तो ध्यान से हिंदी अखबार पढ़ते हैं और न ही हिंदी समाचार समिति की खबरों पर ध्यान देते हैं।

इसी का नतीजा है कि हिंदी पत्रकारिता जिस मुकाम पर पहुंच सकती है, उस पर पहुंच नहीं पा रही है। जिन्हे हिंदी पत्रकारिता का मार्ग-निर्धारण करना है उन्हें उसके वास्तविक गुण-दोषों का पता ही नहीं होता। ये नीति-निर्धारक लोग सुनी-सुनाई और अधकचरी सूचनाओं के आधार पर हिंदी पत्रकारिता का भाग्य-निर्धारण करते रहते हैं।

इसका दोष अकेले मालिकों और संचालकों के मत्थे मढ़ना ठीक नहीं होगा। ये लोग भी हमारे समाज के ही हिस्से हैं। जब पूरा समाज ही भाषाई गुलामी के गर्त में डूबा हुआ है तो इन सेठों, प्रबंधकों और अफसरों से यह उम्मीद करना कि वे किसी युग-प्रवर्तक, किसी समाज-सुधारक या किसी दिव्य-दृष्टा की तरह पेश आएंगे, बिल्कुल फिजूल है। इन संचालकों और मालिकों की बात जाने दें, स्वयं हिंदी अखबारों के संपादकों और पत्रकारों के दिलों में भी अंग्रेजी की दहशत बैठी हुई है।

ऐसा नहीं है कि जिन वर्गों का मैंने यहां जिक्र किया है उनके लोग किसी भी तरह कम जागरूक या कम जिम्मेदार या कम समझदार हों। असली दिक्कत यह है कि उनकी सारी जागरूकता, सारी समझदारी और सारी जिम्मेदारी औपनिवेशिकता की सान चढ़ी हुई है। अंग्रेजी का दबदबा उनके दिमाग पर पिछले दो सौ साल से बैठा हुआ है। उक्त वर्ग में लोगों में से शायद ही कोई ऐसा हो जो कोई अन्य विदेशी भाषा जानता हो या अंग्रेजी बोलने वाले आधा दर्जन देशों के अलावा किसी अन्य देश के समाज या साहित्य से जिसका गहरा सम्बन्ध हो।

ऐसी हालत में यदि हिंदी के प्रतिभाशाली पत्रकार अगर रेगिस्तान में कमल भी खिला दें तो भी उन्हें देखेगा कौन ? हिंदी के अखबारों और समाचार समितियों ने राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय महत्व की अनेक घटनाओं के समाचार देने में अंग्रेजी समाचार पत्रों और एजेंसियों को कई बार अपने बहुत कम साधनों के

बावजूद मात दी है, तो भी इसका श्रेय उन्हें कदाचित ही मिला है।

श्रेय की परवाह उन्हें कभी नहीं होती तो अपना कर्तव्य निष्काम भाव से करते जाते हैं। यहां मुख्य सवाल श्रेय का नहीं है बल्कि यह है कि जिस काम में आप लगे हुए हैं उसे आप उसकी पराकाष्ठा तक पहुंचा सकते हैं या नहीं। अगर पराकाष्ठा तक पहुंचाने की आजादी आपको नहीं है तो आपको यह मान लेने में कोई हर्ज नहीं होना चाहिए कि आप गुलाम हैं, आप लाचार हैं।

हिंदी की अखिल भारतीय पत्रकारिता अभी भी गुलामी और लाचारी के दौर में है। अंग्रेजी एजेंसियों और अंग्रेजी अखबारों की तरह उसके संवाददाता विदेशों के क्या कहने, अपने देश के ही सभी प्रांतों में भी नहीं हैं। हिंदी प्रदेशों के ज्यादातर जिलों में 'भाषा' के संवाददाता नहीं हैं। हिंदी की समाचार समितियां हिंदी इलाके की खबरें अंग्रेजी में प्राप्त करती हैं और उसका हिंदी अनुवाद अपने ग्राहक अखबारों को परोसती हैं। हिंदी जगत अनुवाद का अनुवाद याने जूठन का जूठन खाने को मजबूर है।

इसी प्रकार राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री के साथ यदि विदेश जाना हो तो हिंदी के संवाददाताओं को मौके की भीख मांगनी पड़ती है। अगर हिंदी के अखबार और समाचार समितियां किसी दिन यह सोच लें कि अंग्रेजी से अनुवाद की गई खबरें नहीं परोसेंगे तो इस देश के कर्णधार अपने आप होश में आ जाएंगे। लेकिन क्या इतना साहस हिंदी के सम्पादकों में है? मैंने देश के पिछले तीनों प्रधानमंत्रियों से आग्रह किया तो उन्होंने अब कम से कम इतना तो किया है कि वे देश में कहीं भी जाते हैं तो अपने साथ दोनों हिंदी समितियों के संवाददाताओं को भी ले जाते हैं या एक हिंदी वाले और एक अंग्रेजी वाले को।

मेरे यह समझ में नहीं आता कि हिंदी में ऐसा बड़ा अखबार क्यों नहीं है। जिसके समाचार-संकलन केंद्र हर प्रदेश की राजधानी में हों तथा देश के लगभग सभी प्रमुख जिलों में उसके संवाददाता हों। अब तो हिंदी अखबार यह नहीं कह सकते हैं कि वे भयंकर घाटे में हैं। जरूरत इस बात की है कि जो नफा होता है उसे शान-शौकत में नष्ट करने की बजाय समाचार-संकलन व्यवस्था के विस्तार में खर्च किया जाए। कुछ प्रादेशिक अखबारों में यह काम बड़ी सफलता कर दिखाया है।

अगर प्रादेशिक अखबार अपने संवाददाता प्रदेश के हर जिले में तथा कुछ अन्य प्रदेशों में भी रख सकते हैं तो अपने आप को अखिल भारतीय कहलवाने वाले पत्रों का दायित्व क्या है? यह मुझे बताने की जरूरत नहीं होनी चाहिए। जहां तक समाचार समितियों का सवाल है, दुनिया के हर प्रमुख देश में उनका संवाददाता होना चाहिए। यह कितनी ग्लानिपूर्ण स्थिति है कि पाकिस्तान, मोरिशस, नेपाल, सूरीनाम और गयाना जैसे देशों में भी हिंदी के संवाददाता नहीं हैं। जिन देशों में हिंदी प्रचलित है या तो उनकी खबरें भारतीय जनता को ठीक से मिलती ही नहीं या फिर उन्हें अंग्रेजी की कैंची से काटकर चिपका दिया जाता है।

जरूरी यह भी है कि विदेशों में वे ही लोग संवाददाता बनाकर भेजे जाएं जो उस देश की भाषा जानते हों। अंग्रेजी माध्यमों के विदेश स्थित संवाददाता प्रायः विदेशी भाषाओं से अनभिज्ञा होते हैं। अंग्रेजी में बटोरी गई टूटी-फूटी और बासी खबरें वे भारतीय पाठकों को परोस देते हैं। इसी लचर-पचर जूठन का हिंदी अनुवाद हिंदी जगत को मिल पाता है। क्या हिंदी पत्रकारिता में वह सुबह कभी होगी जब विदेशों से मूल विदेशी भाषा में खबरें इकट्ठी की जाएंगी और उन्हें सीधे स्वदेशी भाषा में प्रस्तुत किया

जाएगा ?

भारतीय पत्रकारिता के लिए क्या यह कम लज्जा की बात है कि खाड़ी में चले युद्ध का सारा विवरण उसे पश्चिमी खबर एजेंसियों के जरिए छापना पड़ा। भारत के अंग्रेजी समाचार माध्यमों, जिनमें अंग्रेजी न्यूज एजेंसियां, रेडियो, दूरदर्शन और अंग्रेजी अखबार भी शामिल हैं, अपनी इस विफलता को किसी पर्दे के पीछे छिपा सकते हैं? युद्ध के तीन मुख्य केंद्र थे, बगदाद, रियाद और तेल अवीव। तीनों जगह भारत के किसी भी अंग्रेजी समाचार माध्यम का एक भी संवाददाता नहीं है। लंदन, निकोसिया, दुबई और बहरीन में बैठे भारतीय संवाददाता विदेशों से जारी हुई अंग्रेजी खबरों की नकल पीट-पीटकर भारत भेज रहे हैं। हिंदी समाचार समितियों और अखबारों को अपने संवाददाता भेजने का न तो अधिकार है और न ही सामर्थ्य है, उन्होंने अपनी अकर्मण्यता से यह सिद्ध किया है कि वे जन्म जात पिछलग्गू हैं, खासतौर से पश्चिमी खबर-माध्यमों के। क्या यह हमारे करोड़ों भारतीय पाठकों और श्रोताओं के साथ अन्याय नहीं है कि हम उन्हें रोज एक तरफा और जब-तब झूठी खबरें परोसते रहे, जिनका प्रायः तीसरे-चैथे दिन ही खण्डन होता रहा। क्या इसका दोष भारत के अंग्रेजी समाचार माध्यमों के माथे पर नहीं है ?

हिंदी अखबारों में संपादकीय निश्चित रूप से अच्छे लिखे जाते हैं लेकिन यह अच्छाई प्रायः राजनैतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक विषयों तक ही सीमित है। आज भी आर्थिक विषयों, वैज्ञानिक और तकनीकी मामलों, प्रतिरक्षा और अंतरराष्ट्रीय सम्बन्धों पर अधिकारपूर्वक लिखने वाले लोग नहीं के बराबर हैं। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि सभी अंग्रेजी अखबारों में इस तरह के लोग हैं। लेकिन यह मानना ही पड़ेगा कि सम्पूर्ण अंग्रेजी पत्रकारिता के क्षेत्र में ऐसे लगभग आधा दर्जन लोगों के नाम गिनाए जा सकते हैं। हिंदी पत्रकारिता में ऐसे लोगों को क्यों नहीं लाया जाता ?

विशेषज्ञों को हिंदी पत्रकारिता के प्रति आकर्षित करने का जो हल्का-सा प्रयास साहू शांति प्रसादजी ने अब से लगभग 15 साल पहले किया था उसे बड़े पैमाने पर किया जाना चाहिए। इसके अलावा अखबारों में सामान्य तौर पर काम करने वाले पत्रकारों को निरंतर प्रशिक्षण और प्रोत्साहन देकर विशेषज्ञ बनाया जा सकता है। अंग्रेजी में विशेषज्ञ होना आसान है। लेकिन हिंदी या किसी भी भारतीय भाषा में होना कठिन है। अंग्रेजी में हर विशेषज्ञ को यह सुविधा होती है कि वह विदेशी अखबारों और चिंतकों के वाक्यों को ज्यों का त्यों धर दें लेकिन जब उसी बात को स्वदेशी भाषा में कहना हो तो उसे पहले अच्छी तरह पचाना होगा और फिर उसे अत्यंत सहज और सरल ढंग से पाठकों के लिए पेश करना होगा।

दूसरे शब्दों में 'इलना' के इस नारे को साकार करना होगा कि 'सोचो बुद्धिमानों की तरह और बात करो साधारण आदमी की तरह।' अंग्रेजी के पत्रकार की यह नियति है कि वह हमेशा दोयम दर्जे का पत्रकार ही बना रहे। अब्बल दर्जा तो हमेशा ब्रिटेन और अमेरिका के पत्रकारों का ही रहेगा।

हिन्दुस्तान के अंग्रेजी पत्रकार 'लंदन टाइम्स' और 'न्यूयार्क टाइम्स' से बेहतर अखबार निकालने का सपना देख ही नहीं सकते, क्योंकि अंग्रेजी उनकी मातृभाषा नहीं है। हिंदी पत्रकारों के सामने यह चुनौती है कि वे अपनी मातृभाषा में वैसे अखबार निकालें जैसे अंग्रेज और अमेरिकी या जापानी, जर्मन या फ्रांस के लोग अपनी मातृभाषाओं और राष्ट्रभाषाओं में निकालते हैं। दूसरे शब्दों में भारत की अंग्रेजी पत्रकारिता हजार बरस की यात्रा के बावजूद विदेशों की अंग्रेजी पत्रकारिता की पिछलग्गू बनी

रहने के लिए अभिशप्त है। इस अभिशाप से हिंदी पत्रकारिता मुक्त है। लेकिन उसकी लाचारी है कि अपने ही देश में और आजाद देश में उसे काम करने का खुला अवसर प्राप्त नहीं है।

उसकी इस लाचारी का आखिर इलाज क्या है? सबसे पहले तो हिंदी पत्रा कारिता के स्तम्भों -संपादन, संचालक और मालिक अपनी हीनता-ग्रन्थि को तोड़ें। अपने गंभीर दायित्व के प्रति वे सचेत हों।

भारत सरकार किसी भी आजाद देश की सरकार की तरह बर्ताव शुरू करे। यानी राष्ट्रभाषा और राजभाषा को अंग्रेजी के मुकाबले हमेशा आगे उचित महत्व देने का मतलब है- न सिर्फ अपना मूल कामकाज वह हिंदी में करे बल्कि हिंदी के संचार माध्यमों को हर मौके पर अग्रणी स्थान प्रदान करे। आज भी आकाशवाणी और दूरदर्शन के मूल समाचार बुलेटिन अंग्रेजी में ही होते हैं। जो हम देखते और सुनते हैं, वह अंग्रेजी की जूठन ही होती है। जिस दिन आकाशवाणी और दूरदर्शन पर मूल खबर हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में बनना शुरू हो जाएगी उसी दिन से भारत की जनसंचार प्रणाली में क्रांति का बिगुल बज उठेगा। आनुषंगिक परिणाम यह भी होगा कि भारतीय भाषाओं की समाचार समितियों के मुकाबले दुगुना शुल्क चुकाएंगे। आज अंग्रेजी खबर एजेंसियों को हिंदी समाचार समितियों के मुकाबले कई गुना ज्यादा पैसा मिलता है। यह अनुपात एकदम उलट जाना चाहिए।

अगर हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की समाचार समितियां बलिष्ठ हों तो जनता की जुबान में उसकी खबरें मिलेंगी। जूठन से वह त्राण पाएगी।

अंग्रेजी एजेंसियां की खबरें शतप्रतिशत अनुवाद ही होती हैं। लोग अपनी भाषाओं में सोचते हैं, अंग्रेजी में नहीं। घटनाएं हिन्दुस्तान में ही घटती हैं ब्रिटेन या अमेरिका में नहीं। फिर भी उनकी खबर अंग्रेजी में ही आती है और सरकार उन्हें प्रामाणित मानती है। मूल के बजाए अनुवाद को, शुद्ध के बजाए जूठन को और देशी के अजाए विदेशी को जो संचार व्यवस्था प्रामाणिक मानती है, क्या उसकी अपनी प्रामाणिकता संदेहास्पद नहीं?

हिंदी पत्रकारिता की लाचारी खत्म करने का तीसरा उपाय यह भी है कि जो-जो हिंदी अखबार और समाचार समितियां अंग्रेजी अखबारों और खबर एजेंसियों से नत्थी हैं उनसे उनको अलग किया जाए। हिंदी पत्रकारिता को दासी पत्रकारिता के दर्जे से अविलम्ब मुक्ति दिलाई जाए। अगर प्रादेशिक अखबार अपने पांव पर खड़े हो सकते हैं और जबर्दस्त मुनाफा भी कमा सकते हैं तो अखिल भारतीय समाचार पत्र और समितियां इसी पंकार का चमत्कार क्यों नहीं कर दिखा सकतीं?

आधुनिक पत्रकारिता में समाचार समितियों की भूमिका अप्रतिम है। अगर समाचार समिति समर्थ हैं जो अखबार अपने आप ही तेजस्वी बन जाएंगे। फिलहाल जरूरी यह है कि हिंदी की समाचार समितियों को अंग्रेजी की न्यूज एजेंसियों का दुमछल्ला बनाए रखने की बजाए देश में सिर्फ दो एजेंसियां चलाई जाएं- एक हिंदी की और दूसरी अंग्रेजी की। इन दोनों में प्रतिस्पर्धा हो और फिर देखा जाए कि कौन किससे बेहतर है। तभी पता चलेगा कि शुद्ध और जूठन में अन्तर क्या है, मूल और अनुवाद में अन्तर क्या है और देशी और विदेशी में अन्तर क्या है?